॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ कैवल्योपनिषत् ॥

विषय सूची

॥अथ कैवल्योपनिषत् ॥ 3

॥ प्रथम खण्ड ॥ 4

॥ द्वितीय खण्ड ॥ 11

शान्तिपाठ 14

॥ श्री हरि ॥

॥अथ कैवल्योपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

कैवल्योपनिषद्वेद्यं कैवल्यानन्दतुन्दिलम् ।
कैवल्यगिरिजारामं स्वमात्रं कलयेऽन्वहम् ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ कैवल्योपनिषत् ॥

कैवल्य उपनिषद

॥ प्रथम खण्ड ॥

ॐ अथाश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच ।
अधीहि भगवन्ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम् ।
यथाऽचिरात्सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ॥ १॥

महान् ऋषि आश्वलायन भगवान् प्रजापति ब्रह्माजी के समक्ष हाथ में समिधा लिए हुए पहुँचे और कहा – हे भगवन्! आप मुझे सदैव संतजनों के द्वारा सेवित, अतिगोपनीय एवं अतिशय वरिष्ठ उस 'ब्रह्मविद्या' का उपदेश प्रदान करें, जिसके द्वारा विद्वज्जन शीघ्र ही समस्त पापों से मुक्त होकर उन 'परम पुरुष' परब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं॥१॥

तस्मै स होवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि ॥ २॥

तदनन्तर ब्रह्माजी ने कहा-हे आश्वलायन ! तुम उस अतिश्रेष्ठ, परात्पर तत्त्व को श्रद्धा, भक्ति, ध्यान (चिंतन) और योगाभ्यास का आश्रय लेकर जानने का प्रयास करो॥२॥

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।
परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥ ३॥

उस (अमृत) की प्राप्ति न कर्म के द्वारा, न सन्तान के द्वारा और न ही धन के द्वारा हो पाती है। (उस) अमृतत्व को सम्यक् रूप से (ब्रह्म को जानने वालों ने) केवल त्याग के द्वारा ही प्राप्त किया है। स्वर्गलोक से भी ऊपर गुहा अर्थात् बुद्धि के गह्वर में प्रतिष्ठित होकर जो ब्रह्मलोक प्रकाश से परिपूर्ण है, ऐसे उस (ब्रह्मलोक) में संयमशील योगीजन ही प्रविष्ट होते हैं॥३॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ४॥

जिन (योगीजनों) ने वेदान्त के विशेष ज्ञान से एवं श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन (अनुभूति) के द्वारा (उस) परमात्मतत्त्व को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, ऐसे वे पवित्र अन्तःकरण से युक्त योगीजन संन्यास-योग के द्वारा ब्रह्मलोक में गमन करके अमृततुल्य हो कल्पान्त में मुक्त हो जाते हैं॥४॥

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः ।
अन्त्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य ॥ ५॥

(योगीजन) स्नान आदि से अपने शरीर को शुद्ध करने के पश्चात् एकान्त स्थान में सुखासन से बैठे। उसके पश्चात् ग्रीवा, सिर तथा शरीर को एक सीध में रखकर समस्त इन्द्रियों को निरोध करके भक्तिपूर्वक अपने गुरु को प्रणाम करें। तदनन्तर संन्यास आश्रम में स्थित (वे) योगीजन अपने हृदय-कमल में रजोगुण से रहित, विशुद्ध, दुःख-शोक से रहित आत्म तत्त्व का विशद चिन्तन करें॥५॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥ ६॥

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
तथादिउमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥ ७॥

इस तरह से जो अचिन्त्य, अव्यक्त तथा अनन्तरूप से युक्त है, कल्याणकारी है, शान्त-चित्त है, अमृत है, जो निखिल ब्रह्माण्ड का मूल कारण है, जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो अनुपम है, विभु (विराट्) और चिदानन्द स्वरूप है, अरूप और अद्भुत है, ऐसे उस उमा (ब्रह्मविद्या) के साथ परमेश्वर को, सम्पूर्ण चर-अचर के पालनकर्ता को, शान्त स्वरूप, तीन नेत्रों वाले, नीलकण्ठ को-जो समस्त भूत-प्राणियों का मूल कारण है, सभी का साक्षी है और अविद्या से रहित हो प्रकाशमान हो रहा है, ऐसे उस (प्रकाशपुञ्ज परमात्मा) को योगीजन ध्यान के माध्यम से ग्रहण करते हैं॥६-७॥

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।

स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥ ८॥

वही (परात्पर पुरुष) ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर रूप में शाश्वत ब्रह्म है, वही भगवान् विष्णु है, वही प्राणतत्त्व है, वही कालाग्नि और चन्द्रमा के रूप में भी है॥८॥

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ ९॥

जो कुछ व्यतीत हो चुका है तथा जो भविष्य में होने वाला है, सभी कुछ वही परात्पर परब्रह्म है; ऐसे उस श्रेष्ठ सनातन परमात्म तत्त्व को प्राप्त करके प्राणी मृत्यु से परे अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। वह फिर जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं फँसता॥९॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥ १०॥

जो मनुष्य अपनी आत्मा को समस्त भूत-प्राणियों के समान देखता है और समस्त भूत-प्राणियों को अपनी अन्तरात्मा में देखता है, ऐसा ही वह (साधक) परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति करता है; वह अन्य दूसरे और किसी उपाय से उस (ब्रह्म) को नहीं प्राप्त कर सकता है॥१०॥

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात्पापं दहति पण्डितः ॥ ११॥

ज्ञानीजन अपनी आत्मा अर्थात् अन्त:करण को नीचे की अरणि एवं ॐकार (प्रणव) को ऊर्ध्व की अरणि बनाते हुए ज्ञानरूपी मन्थन के अभ्यास-प्रक्रिया द्वारा जगत् के बन्धनों-पापों को विनष्ट कर डालते हैं। अर्थात् ज्ञानाग्नि में जलाकर भस्म कर देते हैं॥११॥

स एव मायापरिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वम् ।
स्त्र्यन्नपानादिविचित्रभोगैः स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ॥ १२॥

वही (जीवात्मा) माया के अधीन हुआ, अति मोहग्रस्त होकर शरीर को ही अपना स्वरूप स्वीकार करते हुए सभी तरह के कर्मों को करता रहता है। वही जाग्रत् अवस्था में स्त्री, अन्न-पान आदि विभिन्न प्रकार के भोगों का उपभोग करता हुआ तृप्ति लाभ प्राप्त करता है॥१२॥

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके ।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ॥ १३॥

स्वप्नावस्था में वही जीव अपनी माया के द्वारा कल्पित जीवलोक में सभी तरह के सुख और दुःख का | उपभोग करने वाला बनता है तथा सुषुप्ति काल में माया द्वारा रचित समस्त प्रपञ्चों के विलीन होने के उपरान्त वह (जीव) तमोगुण से अभिपूरित हुआ सुख के स्वरूप को प्राप्त करता है॥१३॥

पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः ।
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम् ।
आधारमानन्दमखण्डबोधं यस्मिँल्लयं याति पुरत्रयं च ॥ १४॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ १५॥

तत्पश्चात् पुनः वह जीव जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों की प्रेरणा से सुषुप्ति से स्वप्नावस्था में अवतरित होता है। इसके अनन्तर (वह) जाग्रत् अवस्था में गमन करता है। इस तरह स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर रूप तीनों पुरियों में जो जीव क्रीड़ा करता है, उसी से यह सभी प्रपञ्चों की विचित्रता उत्पन्न होती है। इन सम्पूर्ण प्रपञ्चों का आधार-स्तम्भ आनन्दस्वरूप अखण्ड बोधस्वरूप है, जिसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर रूप तीनों पुरियाँ लय को प्राप्त होती हैं। इसी से प्राण, मन एवं समस्त इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है; आकाश, वायु, अग्नि, जल और समस्त विश्व को धारण-पोषण करने वाली पृथ्वी की उत्पत्ति होती है॥१४-१५॥

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥ १६॥

जो परब्रह्म परमेश्वर समस्त भूत प्राणियों की आत्मा है, जो सभी कार्य-कारण रूप जगत् का महान् आयतन (आधार) है, जो सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है, नित्य है, (वह) तत्त्व तुम्हीं हो, तुम वही हो॥१६॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत्प्रकाशते ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥ १७॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्था आदि जो प्रपञ्च प्रतिभासित है, वह परब्रह्म रूप है और वही मैं भी हूँ-ऐसा जानकर जीव समस्त बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥१७॥

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ १८॥

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥ १९॥

तीनों अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति) में जो कुछ भी भोक्ता, भोग्य और भोग के रूप में है, उनसे विलक्षण, साक्षीरूप, चिन्मय स्वरूप, वह सदाशिव स्वयं मैं ही हूँ। मैं ही स्वयं वह ब्रह्मरूप हूँ, मुझमें | ही यह सब कुछ प्रादुर्भूत हुआ है, मुझमें ही यह सभी कुछ स्थित है और मुझमें ही सभी कुछ विलीन हो जाता है; वह अद्वय ब्रह्मरूप परमात्मा मैं ही हूँ॥१८-१९॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥ २०॥

मैं (परब्रह्म) अणु से भी अणु अर्थात् परमाणु हूँ, ठीक ऐसे ही मैं महान् से महानतम अर्थात् विराट्। पुरुष हैं, यह विचित्रताओं से भरा-पूरा सम्पूर्ण विश्व ही मेरा स्वरूप है। मैं पुरातन पुरुष हूँ, मैं ही ईश्वर हूँ, मैं | ही हिरण्यमय पुरुष हूँ और मैं ही शिवस्वरूप (परमतत्त्व हूँ)॥२०॥

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाऽहम् ॥ २१

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥ २२॥

वह हाथ-पैरों से रहित होते हुए भी सतत गतिशील है, जो चिन्तन से परे है, ऐसा शक्ति स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं नेत्रों के अभाव में सभी कुछ देखता हूँ, कानों के बिना भी सब कुछ श्रवण करता हूँ, बुद्धि आदि से पृथक् होकर भी मैं सब कुछ जानता हूँ; किन्तु मुझे जानने वाला कोई नहीं है, मैं सदा ही चित् स्वरूप हूँ। समस्त वेद-

उपनिषदादि द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। मैं ही वेदान्त का कर्ता हूँ और वेदवेत्ता भी स्वयं मैं ही हूँ॥२१-२२॥

न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च ।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥ २३ ॥

मुझ (ब्रह्म) को पुण्य-पापादि कर्म स्पर्श नहीं करते , मैं कभी विनष्ट नहीं होता और न ही मेरा कभी जन्म ही होता है। न मेरे शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ ही हैं। मेरे लिए न भूमि है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है और न आकाश तत्त्व ही है॥२३॥

समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ॥
यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्निपूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति
स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति स सुवर्णस्तेयात्पूतो भवति
स कृत्याकृत्यात्पूतो भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो
भवत्यत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत् ॥ ॥ २४॥

अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम् । तस्मादेवं
विदित्वैनं कैवल्यं पदमश्नुते कैवल्यं पदमश्नुत इति ॥ २५॥

जो भी मनुष्य अविनाशी ब्रह्म को इस प्रकार से गुहा-अर्थात् बुद्धि के गह्वर में स्थित, निष्कल (अंग विहीन) एवं अद्वितीय,सदसत् से परे, सभी के साक्षीरूप में विद्यमाने जानता है, वह पवित्रतम परमात्मस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। जो भी मनुष्य इस शतरुद्रिय

का पाठ करता है, वह अग्नि के सदृश पवित्र हो जाता है, वायु की भाँति गतिशील रहते हुए शुचिता का वरण करता है। वह सुरापान और ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो जाता है; उसे स्वर्ण की चोरी का पाप भी नहीं लगता, शुभाशुभ कर्मों से उसका उद्धार हो जाता है। भगवान् सदाशिव के प्रति समर्पित हो वह अविमुक्त स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इसलिए जो (मनुष्य) आश्रम से अतीत हो गये हैं, ऐसे उन परमहंसों को सर्वदा या फिर कम से कम एक बार इस (उपनिषद्) का पाठ अवश्य करना चाहिए॥२४-२५॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति कैवल्योपनिषत् ॥

॥ कैवल्य उपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥